© 2018 IJSRSET | Volume 4 | Issue 7 | Print ISSN: 2395-1990 | Online ISSN : 2394-4099

श्रीमद्भगवद्गीता में समता–भाव तथा काव्यशास्त्र में उसका महत्व

देवी प्रसाद गुप्त,
शोधछात्र, संस्कृत विभाग,
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

रजस्तमोभ्यामस्पृष्टः मनः सत्त्वमिहोच्यते।
निर्वृतयेऽस्य तद्योगात् प्रभवन्तीति सात्त्विकाः।।[1]

रजस् तथा तमस् से असम्बद्ध मन सत्त्व कहा जाता है जो इस मन के सुख के लिये स्तम्भ आदि अनुभावों के योग से उत्पन्न होते हैं। इसी कारण अर्थात् सत्त्वोद्रेक के कारण ये सात्त्विक कहे जाते हैं। स्पष्टतया सात्त्विक भावों पर आत्मा अर्थात् सहृदयता का नियंत्रण रहता है। आचार्य भरत ने सात्त्विक भावों के विषय में बड़ी सुन्दर उक्ति की है–

अत्राह किमन्ये भावाः सत्त्वेन विनाभिनीयन्ते यत एते सात्त्विकाः इच्युच्यन्ते? अत्रोच्यन्ते, इह सत्त्वं नाम मनः प्रभवम्। तच्च समाहित मनस्त्वाद् उत्पद्यते। मनः समाधानाच्च सत्त्वनिष्पत्तिर्भवति। तस्य च योऽसौ स्वभावः रोमांचास्रवैवर्ण्यादिको न शक्यतेऽन्यमनसा कर्तुं इति लोकस्वभावनुकरणत्वाच्च नाट्यस्य सत्त्वमीप्सितम्। को दृष्टान्त इति चेत्, अत्रोच्यते इहहि नाट्यधर्मी प्रवृताः सुखदुःखकृता भावाः सत्त्वविशुद्धाः कार्याः यथा स्वरूपाभवन्ति।[2]

सात्त्विक भावों के लक्षण के रूप में दशरूपककार उक्ति है–

सत्त्वादेव समुत्पत्तैस्तच्च तद्भावभावनम्।[3]

सात्त्विक भाव की स्पष्टता श्रीमद्भगवद्गीता में 'समता' नामक भाव से तुलना करने एकसमान प्रतीत होती है। काव्यशास्त्र में जहाँ सात्त्विक भाव आत्मीयता की बात करता है वही श्रीमद्भगवद्गीता में 'समता' नामक भाव भी सहृदयता की बात करता है।

अतएव 'समता' नामक भाव का स्पष्टीकरण श्रीमद्भगवद्गीता के परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत शोध–पत्र का विषय है।

आजकल समता पर विशेष चर्चा चल रही है। सबके साथ समता का वर्ताव करो–ऐसा प्रचार किया जा रहा है। परन्तु वास्तव में समता किसे कहते है और वह कब आती है–इसे समझने की बड़ी आवश्यकता है।

समता कोई खेल तमाशा नहीं है, प्रत्युत परमात्मा का साक्षात् स्वरूप हैं जिनका मन समता में स्थित हो जाता है, वे यहाँ जीते जी ही संसार पर विजय प्राप्त कर लेते हैं और परब्रह्म परमात्मा का अनुभव कर लेते है।[4] यह समता तब आती है जब दूसरों का दुःख अपना दुःख और दूसरों का सुख अपना सुख हो जाता है। श्रीमद्भगवदगीता में भगवान् कहते हैं कि–हे अर्जुन! जो पुरुष अपने शरीर की तरह मेरे को सब जगह सम देखता है और सुख अथवा दुःख को भी सब जगह सम देखता है, वह योगी परमश्रेष्ठ माना गया है।[5]

जैसे शरीर के किसी भी अंग में पीड़ा होने पर उसकों दूर करने की लगन लग जाती है, ऐसे ही किसी प्राणी को दुःख, सन्ताप आदि होने पर उसको दूर करने की लगन लग जाय, तब समता आती है। सन्त तुलसीदास की उक्ति है–

'पर दुख सुख देखे पर'[6]

जब तक अपने सुख की लालसा है, तब तक चाहे जितना उद्योग कर लें, समता नहीं आयेगी। परन्तु जब हृदय से यह लगन लग जायेगी कि दूसरों को सुख कैसे पहुँचे? उनकों आराम कैसे हो? तब समता स्वतः आ जायेगी। इसका आरम्भ सर्वप्रथम अपने घर से करना चाहिए। हृदय में ऐसा भाव हो कि किसी भी किंचिन्मात्र भी दुःख या कष्ट न पहुँचे, किसी का कभी अनिष्ट न हो। चाहे मैं कितना ही कष्ट पाऊँ, पर मेरे माता–पिता, स्त्री–पुत्र, भाई–भौजाई आदि को सुख होना चाहिए। घरवालों को सुख पहुँचाने से अपने हृदय में शांति आयेगी ही। जहाँ अपने घर का भी सम्बन्ध नहीं है, वहाँ सुख पहुँचायें अथवा जहाँ ममतापूर्वक सुख पहुँचाते हैं, वहाँ से अपनी ममता हटा लें–दोनों का परिणाम एक ही होगा।

चित्रकूट में लक्ष्मण जी भगवान राम और सीता की सेवा कैसे करते है, यह बताते हुए गोस्वामी तुलसीदास जी कहते हैं–

सेवहिं लखनु सीय रघुबीरहिं। जिमि अबिबेकी पुरूष सरीरहिं।[7]

अर्थात् लक्ष्मण जी भगवान् राम और सीता जी की वैसे ही सेवा करते है, जैसे अज्ञानी मनुष्य अपने शरीर की सेवा करता है। अपने शरीर की सेवा करना, उसे सुख पहुँचाना समझदारी नहीं है। अपने शरीर की सेवा तो पशु भी करते हैं। जैसे बँदरी की अपने बच्चे पर इतनी ममता रहती है, कि उसके मरने के बाद भी वह उसके शरीर को पकड़े हुए चलती है, छोड़ती नहीं, परन्तु जब कोई वस्तु खाने के लिए मिल जाती है, तब वह स्वयं तो खा लेती है, पर बच्चे को नहीं खाने देती। बच्चा खाने की चेष्टा करता है तो उसे ऐसी घुड़की मारती है कि वह चीं–चीं करते भाग जाता है। अतः ममता के रहते हुए समता का आना असम्भव है।

जिससे हमें कुछ लेना नहीं है, जिससे हमारा कोई स्वार्थ नहीं है, ऐसे व्यक्ति के साथ भी हम प्रेमपूर्वक अच्छा से अच्छा बर्ताव करें, जिससे उसका हित हो। कोई व्यक्ति मार्ग में भटक गया है, उसे मार्ग का पता नहीं है और वह हमसे पूछता है। हम उसे बड़ी प्रसन्नता से मार्ग बतायें अथवा कुछ दूर तक उसके साथ चले तो हमें हृदय में प्रत्यक्ष सुख का, शान्ति का अनुभव होगा। परन्तु यदि हम जानते हुए भी उसे मार्ग नहीं बतायेंगे, तो हमारे हृदय में सुख नहीं होगा। यह अनुभव की बात है, कोई करके देख ले। किसी को प्यास लगी है तो उसे बता दें कि भाई, इधर आओं इधर ठण्डा जल है। फिर हम अपना हृदय देखें। हमारे हृदय में प्रसन्नता आयेगी, सुख आयेगा। यह सुख हमारा कल्याण करने वाला है। दूसरा दुःख पाये, पर मै सुख ले लूँ– यह सुख पतन करने वाला है। इससे न तो व्यवहार में हमारी उन्नति होगी और न परमार्थ में। हम सत्संग का आयोजन करते हैं। उसमें आने वाले व्यक्तियों के बैठने की व्यवस्था करते हैं तो उनसे प्रेमपूर्वक कहें कि आइये, यहाँ बैठिये। उन्हें वहाँ बैठायें, जहाँ से वे ठीक तरह से सुन सकें। वे आराम से कैसे बैठ सकें? ठीक तरह से कैसे सुन सकें? ऐसा करने से हमारे हृदय में प्रत्यक्ष शान्ति आयेगी पर, वहीं हुक्म चलायें कि क्या करते हो? इधर बैठों इधर नहीं तो बात वही होने पर भी हृदय में शान्ति नहीं

आयेगी। भीतर में जो अभिमान है, वह दूसरों को चुभेगा, बुरा लगेगा ऐसा बर्ताव करें और चाहे कि समता आ जाय, तो वह कभी आयेगी नहीं।

सबके हित में जिसकी प्रीति हो गयी है, उन्हें भगवान प्राप्त हो जाते हैं– ते प्राप्नुवन्ति मामेव सर्वभूतहिते रताः कारण कि भगवान् प्राणिमात्र के परम सुहृद है। वे प्राणिमात्र का पालन–पोषण करने वाले हैं। आस्तिक से आस्तिक हो अथवा नास्तिक से नास्तिक दोनों के लिए भगवान् का विधान बराबर है। एक व्यक्ति बड़ा आस्तिक है, भगवान को बहुत मानता है और उन्हें पाने के लिए साधन–भजन करता है और एक व्यक्ति ऐसा नास्तिक है कि संसार से भगवान् का खाता उठा देना चाहता है। भगवान् को मानने से और भगवान् के कारण ही दुनिया दुःख पा रही है, भगवान् नाम की कोई चीज है ही नहीं ऐसा उसके हृदय में भाव है और ऐसा ही प्रचार करता है। ऐसे नास्तिक से नास्तिक व्यक्ति की भी प्यास जल मिटाता है और यही जल आस्तिक–से–आस्तिक व्यक्ति की भी प्यास मिटाता है। जल में यह भेद नहीं है कि वह आस्तिक की प्यास ठीक तरह से शान्त करे और नास्तिक की प्यास शान्त न करे। वह समान रीति से सबकी प्यास मिटाता है। ऐसे ही सूर्य समान रीति से सबको प्रकाश देता है, हवा समान रूप से सबकों श्वास लेने देती है, पृथ्वी समान रीति से सबको रहने का स्थान देती है। इस प्रकार भगवान् की रची हुई प्रत्येक वस्तु सबकों समान रीति से मिलती है।

'समता' का अर्थ यही है। कि समान रीति से सबके साथ रोटी–बेटी (भोजन और विवाह) का बर्ताव करे। व्यवहार में समता तो महान् पतन करने वाली चीज हैं समान बर्ताव यमराज का, मौत का नाम है, क्योंकि उसके बर्ताव में विषमता नहीं होती। चाहे महात्मा हो चाहे गृहस्थ हो, चाहे साधु हो, चाहे पशु हो, चाहे देवता हो, मौत सबकी बराबर होती है। इसलिए यमराज को 'समवर्ती'[10] कहा गया है। अतः जो समान बर्ताव करते हैं, वे भी यमराज हैं।

पशुओं में भी समान बर्ताव पाया जाता है। कुत्ता ब्राह्मण की रसोई में जाता है तो पैर धोकर नहीं जाता। ब्राह्मण की रसोई हो या शूद्र की, वह तो जैसा है, वैसा ही चला जाता है, क्योंकि यह उसकी समता है। पर मनुष्य के लिये यह समता नहीं है, प्रत्युत महान् पशुता है। समता तो यह है कि दूसरे का दुःख कैसे मिटे, दूसरे को सुख कैसे हो, आराम कैसे हो? ऐसी समता रखते हुए बर्ताव में पवित्रता, निर्मलता रखनी चाहिए। बर्ताव में पवित्रता रखने से अन्तःकरण पवित्र, निर्मल होता है। परन्तु बर्ताव में अपवित्रता रखने से, खान–पान आदि एक करने से अन्तःकरण में अपवित्रता आती है, जिससे अशान्ति बढ़ती है। केवल बाहर का बर्ताव समान रखना शास्त्र और समाज की मर्यादा के विरुद्ध है। इससे समाज में संघर्ष पैदा होता है।

वर्गों में ब्राह्मण ऊँचे हैं और शूद्र नीचे हैं– ऐसा शास्त्रों का सिद्धान्त नहीं है। ब्राह्मण उपदेश के द्वारा, क्षत्रिय रक्षा के द्वारा, वैश्य धन–सम्पत्ति, आवश्यक वस्तुओं के द्वारा, शूद्र शरीर से परिश्रम करके सभी वर्गों की सेवा करें। इसका अर्थ यह नहीं हैं कि दूसरे अपने कर्तव्यपालन में परिश्रम न करें, प्रत्युत अपने कर्तव्यपालन में समान रीति से सभी परिश्रम करें। जिसके पास जिस प्रकार की शक्ति, विद्या, वस्तु, कला आदि है उसके द्वारा चारों वर्णों की सेवा करने में भेद–भाव न रखें।

आजकल वर्णाश्रम को मिटाकर पार्टीबाजी हो रही है। आज वर्णाश्रम में इतनी लडाई नहीं है, जिसकी लडाई पार्टीबाजी में हो रही है– यह प्रत्यक्ष बात है। पहले लोक चारों वर्णों और आश्रमों की मर्यादा में चलते थे और

सुख–शान्तिपूर्वक रहते थे। आज वर्णाश्रम की मर्यादा को मिटाकर अनेक पार्टियाँ बनायी जा रही है, जिससे संघर्ष को बढ़ावा मिल रहा है। गाँवों में सब लोगों को पानी मिलना कठिन हो रहा है। जिनके अधिकार में कुँआ है, वे कहते हैं कि तुमने उस पार्टी को वोट दिया है, इसलिये तुम यहाँ से पानी नहीं भर सकते। माँ, बाप और बेटा–तीनों अलग–अलग पार्टियों को वोट देते है और कितना महान अनर्थ हो रहा है।

यदि समता लानी हो तो दूसरा व्यक्ति किसी भी वर्ण, आश्रम, धर्म, सम्प्रदाय, मत आदि का क्यों न हो, उसे सुख देना है, उसका दुःख हरना है। और उसका वास्तविक हित करना है। उनमें यह भेद हो सकता है कि आप राम–राम कहते हैं, हम कृष्ण–कृष्ण कहेंगे, आप वैष्णव हैं हम शैव हैं, आप मुसलमान हैं, हम हिन्दू हैं इत्यादि। परन्तु इससे कोई बाधा नहीं आती है बाधा तब आती है, जब यह भाव रहता है कि वे हमारी पार्टी के नहीं है। इसलिए उनकों चाहे दुःख होता रहे, पर हमें और हमारी पार्टीवालों को सुख हो जाये। यह भाव महान् पतन करने वाला है। इसलिये कभी किसी वर्ण आदि के मनुष्यों को कष्ट हो तो उनके हित की चिन्ता समान रीति से होनी चाहिए और उन्हें सुख हो तो उससे प्रसन्नता समान रीति से होनी चाहिए। जैसे ब्राह्मणों और शूद्रों में संघर्ष हुआ। उसमें शूद्रों की हार और ब्राह्मणों की जीत होने पर हमारे मन में दुःख हो, तो यह विषमता है, जो बहुत हानिकारक है। ब्राह्मणों और शूद्रों–दोनों के प्रति ही हमारे मन में हित की समान भावना होनी चाहिये। किसी का भी अहित हमें सहन न हो। किसी का भी दुःख हमें समान रीति से खटकना चाहिए। यदि ब्राह्मण दुःखी है तो उसे सुख न पहुँचायें–ऐसा पक्षपात नहीं होनी चाहिए। प्रत्युत शूद्र को सुख पहुँचाने की चेष्टा होनी चाहिए। इस प्रकार किसी भी वर्ण, आश्रम, धर्म, सम्प्रदाय आदि को लेकर पक्षपात नहीं होना चाहिए। सभी के प्रति समान रीति से हित का बर्ताव होना चाहिए। यदि कोई निम्न वर्ग का है और उसे हम ऊँचा उठाना चाहते हों, तो उस वर्ग के लोगों के भावों और आचरणों को शुद्ध और श्रेष्ठ बनाना चाहिए, उनके पास वस्तुओं की कमी हो, तो उसकी पूर्ति करनी चाहिए, उनकी सहायता करनी चाहिये, परन्तु उन्हें उकसाकर उनके हृदयों में दूसरे वर्ग के प्रति ईर्ष्या और द्वेष के भाव भर देना अत्यन्त ही अहितकर, घातक तथा लोक–परलोक में पतन करने वाला है। कारण की ईर्ष्या अभिमान आदि मनुष्य का महान पतन करने वाले हैं। यदि ऐसे भाव ब्राह्मणों में हैं तो उनका भी पतन होगा और शूद्रों में है तो उनका भी पतन होगा। उत्थान तो सद्भावों, सद्गुणों, सदाचारों से होता है।

भोजन, वस्त्र, मकान आदि निर्वाह की वस्तुओं की जिनके पास कमी है, उन्हें ये वस्तुयें विशेषता से देनी चाहिये। चाहे वो किसी भी वर्ण, आश्रम, धर्म, सम्प्रदाय आदि के क्यों न हों। सबका जीवनयापन सूखपूर्वक होना चाहिए।

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामया सर्वेभद्राणि पश्यन्तु मॉ कश्चिद् दुःखभाग भेवत्। ऐसा भाव रखते हुए यथा योग बर्ताव करना ही समता है, जो सम्पणू मनुष्य के लिए हितकर है।

ठीक, इसी प्रकार काव्य में कवि समता रखते हुए अपने भावों का उद्गार करता है। जिसके कारण काव्य व्यक्तिनिष्ठ से समष्टिनिष्ठ हो जाता है। महर्षि वाल्मीकि ने क्रौंची के शोक को समष्टि प्रदान करने के लिए इस प्रकार के भाव व्यक्त किये हैं–

मा निषाद् प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वती समाः।
यत्क्रौंचमिथुनादेकमवधीः काममोहितम्।। [11]

इसी कारण आचार्य आनन्दवर्धन काव्य की आत्मा (ध्वनि) की आपत्ति सृहदयता अर्थात् समता/सात्त्विक नामक भाव से मानते हैं।[12] आचार्य विश्वनाथ ने सात्त्विक भाव के सम्बन्ध में इस प्रकार की उक्ति की हैं–

सत्त्वोद्रेकादखण्डस्वप्रकाशानन्दचिन्मयः।

वेधान्तरस्पर्शशून्यो ब्रह्मास्वादसहोदर।।[13]

अतः काव्य की उत्पत्ति श्रीमद्भगवद्गीता के 'समता' नामक सिद्धान्त पर पूर्णतः उपर्युक्त प्रतीत होती है।

सन्दर्भ सूची

1. सरस्वती कण्ठाभरण–द्वितीय भाग का 5/20
2. नाट्यशास्त्र–7/92वें का वृत्तिभाग
3. दशरूपक – 4/4 पृष्ठ 318
4. इहैव तैर्जितः सर्गो येषां साम्ये स्थितं मनः ।
   निर्दोषं हि समं ब्रह्म तस्माद्ब्रह्माणि वे स्थिताः।। –श्रीमद्भगवद्गीता – 5/19 पृष्ठ –392
5. यं लब्धवा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः।
   यस्मिन्स्थितो न दुःखेन गुरूणापि विचाल्यते।। –श्रीमद्भगवद्गीता –6/22 पृष्ठ 446
6. रामचरितमानस 7/38/1
7. रामचरितमानस 2/142/1
8. श्रीमद्भगवद्गीता 12/4 पृष्ठ 809
9. भोक्तारं यज्ञतपसां सर्वलोकमहेश्वरम्।
   सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शान्तिमृच्छति।। –श्रीमद्भगवद्गीता – 5/29 पृष्ठ 407
10. समवर्ती परेतराट्–अमरकोष 1/1/58
11. रामायण–बालकाण्ड 2/51
12. तैन ब्रूमः सहृदयमनः प्रीतये तत्त्स्वरूपम्–ध्वन्यालोक 1/1 पृष्ठ – 2
13. साहित्यदर्पण 3/2 पृष्ठ– 105